मार्च १९९३ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

सब्ब पापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
स चित्त परियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

सभी पाप कर्मोंसे बचें, कुशलकर्मोंकी सम्पदा संचित करें। अपने चित्त को निर्मल करते रहें, सभी बुद्धों का यही उपदेश है।

– धम्मपद - १४/५.

आत्म कथन

धर्म ही महान है !

कुछ वर्षों पूर्व विदेशों की एक प्रसिद्ध पत्रिका में मेरा इन्टरव्यू छपा जिसमें एक प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा था कि भगवान बुद्ध की शिक्षा का असीम श्रद्धापूर्वक, यथाशक्ति पालन करते हुए भी मैं अपने आपको बौद्ध नहीं कहता। इसी प्रकार बैंकाक में थाई सरकार के टी. वी. पर दिए गये साक्षात्कार के दौरान एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि मैं किसीको बौद्ध नहीं बनाता क्योंकि मैं बौद्ध धर्म का नहीं, धर्म का प्रचार करता हूं। बर्मा से जो पहला जत्था विपश्यना सीखने इगतपुरी आया तो उसमें के, अनेक लोगों ने पहला प्रश्न यही किया कि मैंने अब तक कितने लोगों को बौद्ध बना लिया है? मेरा उत्तर था –"एक को भी नहीं। मैं किसीको बौद्ध बनाने के लिए विपश्यना नहीं सिखाता। मैं लोगों को धार्मिक बनाने का प्रयास करता हूं।" प्रेस, रेडियो या टी.वी. पर अथवा सार्वजनीन सभाओं में मेरे द्वारा दिये गये इस प्रकार के अनेक वक्तव्यों के कारण बर्मा, श्रीलंका और थाईलैण्ड जैसे देशों में मेरे बारे में अनेक भ्रान्तियां फैलीं और कुछ मात्रा में विरोध भी। मेरी जन्म-भूमि बर्मा में तो यह भ्रान्ति और विरोध अप्रिय सीमा तक बढ़ा। वहां मेरा एक घनिष्ठ मित्र और सहयोगी है। वह मेरे द्वारा सिखाई गई विपश्यना साधना पर बिल हार्ट द्वारा लिखी गई प्रसिद्ध अँग्रेजी पुस्तक का बर्मी अनुवाद करके स्थानीय लोकप्रिय मासिक-पत्र में किश्तवार छपवा रहा था। उसने रुष्ट होकर यह कार्य बीच में ही रोक दिया। इस बात को लेकर वहां बड़ी चर्चा रही। श्रीलंका की एक विश्व-विश्रुत प्रकाशन संस्था के मासिक बुलेटिन में सम्पादक ने मुझे खरी-खोटी सुनाई। बर्मा में इस बात की भी बड़ी चर्चा हुई। परन्तु मैं अपनी मान्यताओं पर दृढ़ रहा और हूं और जब तक उसमें कोई दोष नहीं देख लूं, जिसकी कि सम्भावना बिल्कुल नहीं लगती, तब तक दृढ़ ही रहूंगा। सौभाग्य से मेरी मान्यता को स्पष्ट करने के भद्र अवसर भी मुझे प्राप्त हुए और उनका अच्छा ही परिणाम निकला।

ढाई वर्ष पूर्व एक ऐसा प्रसंग उत्पन्न हुआ कि बर्मी सरकार के धार्मिक मंत्रालय ने मुझे धर्म प्रवचन देने के लिए बर्मा आमंत्रित किया। हुआ यह कि एक ओर तो मेरे बारे में भ्रान्ति-भरा विरोध का वातावरण था। दूसरी ओर बर्मा से लोगों के दल के दल इगतपुरी साधना करने आते थे। वे सभी यहां के काम के बारे में प्रशंसात्मक बातें कहते थे। जो भी हो, मेरे लिए यह अत्यंत प्रसन्नता का अवसर था। एक तो इतने लम्बे अन्तराल के बाद अपनी जन्म-भूमि लौटने की प्रसन्नता थी, दूसरे इस बात की प्रसन्नता थी कि मेरे लिए जहां प्रवचनों का आयोजन किया गया था, वह बर्मा के भिक्षुओं की प्रसिद्ध विश्व-विद्यालय थी। वहां मुझे बर्मा के मूर्धन्य, विद्वान भिक्षुओं के बीच बोलना था। अतः जो गलतफहमियां फैली थीं, उनके निराकरण का भी अत्युत्तम अवसर दीखता था।

और यही हुआ। वही प्रश्न उठे जिनको लेकर भ्रान्तियां फैली थीं। बर्मा में भिक्षुओं के दो विश्व-विद्यालय हैं। एक रंगून और दूसरा मांडले में। उन दोनों में मेरे प्रवचन थे। इन प्रवचनों के दौरान और इनके बाद हुए प्रश्नोत्तरों के दौरान तथा बर्मा के शीर्षस्थ पालि पण्डितों के साथ हुई तीन अन्तरंग परिचर्चाओं के दौरान स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हुई और नभोमण्डल पर छाया हुआ सारा कुहरा स्वतः दूर हो गया। लोग समझदार थे, जल्दी ही बात समझ गये और अत्यंत प्रसन्न हुए।

इसी प्रकार श्रीलंका की सरकार ने भी कोलम्बो में एक विपश्यना शिविर लगाने के लिए आमंत्रित किया। वहां भी सार्वजनीन प्रवचन हुए और वहां के भिक्षु तथा गृहस्थों में से चोटी के विद्वानों से अलग से एकांत में वार्तालाप करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। इससे उनका भी समाधान हुआ। एक शिविर लगाने के लिए थाईलैण्ड से भी निमंत्रण मिला। वहां भी सार्वजनीन प्रवचन हुए। विद्वान भिक्षु और गृहस्थों की एक अन्तरंग चर्चा-गोष्ठी हुई और वहां भी सारी शंकाएं, कुशंकाएं दूर हुईं।

सभी जगह मेरे पास कहने के लिए एक ही बात थी – मैं भगवान बुद्ध के प्रति इसीलिए आकर्षित हुआ कि वह लोगों को धार्मिक बनाते थे, साम्प्रदायिक नहीं। सम्प्रदाय तो मेरे पास अपना था ही। मैं कट्टर सनातनी सम्प्रदाय में जन्मा और पला। भले उसमें कितने ही दोष थे परन्तु मुझे सम्प्रदाय बदलने की कभी कोई आवश्यकता नहीं महसूस हुई। जैसा भी अपना सम्प्रदाय था, मैं उससे सन्तुष्ट था। सम्प्रदाय बदलने की बात होती तो मैं शायद कल्याणी विपश्यना से वंचित ही रह जाता। परन्तु सौभाग्य से ऐसे गुरुदेव मिले जिन्होंने मुझे धर्म में दीक्षित किया, सम्प्रदाय में नहीं। भगवान बुद्ध ने भी तो यही किया था। उन्होंने कोई सम्प्रदाय स्थापित नहीं किया। लोगों को सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं किया, शुद्ध धर्म में ही दीक्षित किया और इस परम्परा में जो भी आचार्य की गद्दी पर प्रतिष्ठापित होता है, वह बुद्ध-पुत्र बुद्ध का ही प्रतिनिधित्व करता है। अतः परम पूज्य गुरुदेव भगवान बुद्ध के प्रतिनिधि के रूप में बुद्ध-मंतव्य को खूब समझते थे।

भगवान बुद्ध के समय धर्म के नाम पर जो बाह्य आडम्बर चलते थे, जिन थोथे कर्म-काण्डों का बोलबाला था। जिन

साम्प्रदायिक और कल्पनाजन्य दार्शनिक मान्यताओं में लोग उलझे थे, उनका निराकरण कर धर्म की शुद्धता उजागर करना ही उन्हें अभिप्रेय था। धर्म के ही नाम पर यज्ञ की पावन वेदियां कसाईयों के कत्लखाने का वीभत्स दृश्य प्रस्तुत कर रही थीं। धर्म के ही नाम पर जात-पांत, वर्ण-गोत्र की अनीतिपूर्ण सामाजिक व्यवस्था समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को पंगु बना कर पीढ़ी-दर-पीढ़ी दीन-हीन और शोषित-पीड़ित बने रहने को मजबूर कर रही थी। धर्म का यह घिनौना स्वरूप बड़ा ही अनर्थकारी था, अमंगलकारी था। उसे बदल कर धर्म का कल्याणकारी,शुद्ध स्वरूप पुनः स्थापित करना ही उस महापुरुष को अभीष्ट था और यही उन्होंने जीवन भर किया।

शुद्ध धर्म का ऐसा सार्वजनीन, सार्वदेशिक और सार्वकालिक सनातन स्वरूप प्रकाशित किया, जिसमें जात-पांत और साम्प्रदायिकता का भेद-भाव टिक नहीं सकता था। चाहे जिस जाति, गोत्र, वर्ण, वर्ग या सम्प्रदाय के लोग हों, बिना भेद-भाव के जिसे सभी धारण कर सकें और जो सभी धारण करनेवालों के लिए समान रूप से मंगल-फलदायी हो वही सत्य धर्म है, वही शुद्ध धर्म है। और वह है; –

[१] शील पालन याने सदाचार का जीवन जीना। शरीर और वाणी के सभी पापमय दुष्कर्म जैसे कि हिंसा, चोरी, व्यभिचार और मादक पदार्थों के सेवन से विरत रहना और ऐसी आजीविका याने ऐसे व्यापार, रोजगार से विरत रहना जिससे अन्य लोगों की सुख-शान्ति और स्वास्थ्य की हानि हो।

[२] समाधि याने मन को वश में करना और वह भी अपने ही सहज, स्वाभाविक सांस के सार्वजनीन आलम्बन के आधार पर। इस प्रकार सही कुशलता संचित करना।

[३] प्रज्ञा याने परोक्ष नहीं बल्कि स्वानुभूति द्वारा प्राप्त हुए प्रत्यक्ष ज्ञान में स्थापित होकर अपने अन्तर्मन की गहराइयों तक राग, द्वेष, मोह आदि विकारों का निष्कासन कर सर्वथा विकार विमुक्त हो जाना और वह भी अपने ही शरीर और चित्त का यथाभूत अवलोकन करने के सार्वजनीन आलम्बन के आधार पर।

जो भी व्यक्ति बुद्ध हो जाता है वह धर्म को इन तीन भागों में ही व्याकृत करता है। यही उसकी शिक्षा होती है, यही उसका शासन होता है, यही उसका अनुशासन होता है। केवल गौतम नामक बुद्ध ही नहीं बल्कि सभी बुद्धों की यही शिक्षा होती है, शासन अनुशासन होता है। बुद्ध बन जाना किसी काल्पनिक अदृश्य शक्ति की कृपा पर निर्भर नहीं करता।अनेक जन्मों से पुण्य-पारमिताओं का संचय करते हुए और तप तथा संयम के बल पर कोई भी व्यक्ति बोधि प्राप्त कर बुद्ध बन सकता है। इस अनादि संसार में गौतम के पूर्व भी अनगिनत बुद्ध हुए और उनके पश्चात् भी इस अनन्त भव संसरण में न जाने कितने और बुद्ध होंगे। यह व्यक्ति के ही अनगिनत जन्मों के अपने परिश्रम, पराक्रम और पुरुषार्थ के द्वारा साध्य है।

जो भी बुद्ध होगा वह धर्म के नाम पर चलने वाले सारे कूड़े-कर्कट को दूर करके ऐसे ही शुद्ध धर्म की स्थापना करेगा। वह लोगों को किसी सम्प्रदाय के बाड़े में नहीं बांधेगा। इसी प्रकार धर्माचार्य की गद्दी पर बैठने वाला व्यक्ति भी यथाशक्ति यही करेगा। बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया, बौद्ध धर्म का नहीं। उन्होंने किसी को बौद्ध नहीं बनाया। सारी बुद्ध-वाणी में बौद्ध शब्द कहीं ढूंढे भी नहीं मिलेगा। बुद्ध अपने अनुयायियों के लिए केवल यही शब्द इस्तेमाल करते थे जैसे धम्मि [धर्मी], धम्मिको [धार्मिक], धम्मट्ठो [धर्मिष्ठ], धम्मचारी [धर्मचारी], धम्मविहारी [धर्मविहारी]। लगता है बुद्ध के पांच सौ वर्ष बाद तक किसी ने अपने आपको बौद्ध नहीं कहा।

शील, समाधि, प्रज्ञा का धर्म सार्वजनीन है। यह किसी एक जाति, वर्ण या सम्प्रदाय की बपौती नहीं है। यह न बौद्ध धर्म है, न हिन्दू धर्म, न जैन, न मुस्लिम, न क्रिश्चियन, न सिक्ख, न पारसी, न यहूदी। यह सबका है। सबके लिए समानरूप से कल्याणकारी है। किसी भी जाति, वर्ण, वर्ग और सम्प्रदाय का व्यक्ति, किसी भी देश का व्यक्ति, किसी भी काल का व्यक्ति शील, समाधि और प्रज्ञा का शुद्ध धर्म धारण कर धर्मी, धार्मिक ,धर्मिष्ठ, धर्मचारी, धर्मविहारी बन सकता है; वह अपने आपको हिन्दू, बौद्ध आदि चाहे जिस नाम से पुकारे।वह मुख्यतः धार्मिक ही बन जायेगा। हिन्दू धार्मिक हिन्दू बन जायेगा, बौद्ध धार्मिक बौद्ध, जैन धार्मिक जैन, ईसाई धार्मिक ईसाई, मुस्लिम धार्मिक मुस्लिम, सिक्ख धार्मिक सिक्ख, पारसी धार्मिक पारसी, यहूदी धार्मिक यहूदी बन जायेगा। धार्मिक बन जायेगा तो भला आदमी बन जायेगा, नेक इन्सान बन जायेगा। मानव समाज का गौरव बन जायेगा। ऐसा व्यक्ति कभी कोई ऐसा काम कर ही नहीं सकेगा जिसमें साम्प्रदायिकता या जात-पांत के भेद-भाव की बू हो। वह कभी कलह, विग्रह में शरीक हो ही नहीं सकेगा।वह सदा मैत्री और सद्भावना का ही जीवन जीयेगा। धर्म के नाम पर जो दंगे-फसाद, मारकाट, खून-खराबा और आगजनी चलती है उसमें वह कभी सम्मिलित नहीं हो सकेगा, क्योंकि वह साम्प्रदायिक नहीं धार्मिक बन जायेगा।

कोई बुद्ध होता है तो धर्म की संस्थापना करता है। लोगों को धार्मिक बनाता है, बौद्ध नहीं। काश्यप, भारद्वाज, कात्यायन, मोद्गल्यायन आदि ब्राह्मणों के गोत्र हैं। इन नामों के व्यक्ति बुद्ध से धर्म सीख कर जीवन भर उन नामों को ही धारण करते रहे। भगवान ने कात्यायन का नाम पलट कर बोद्धायन नहीं कर दिया। कात्यायन जीवन भर कात्यायन ही रहा। इसी प्रकार मोद्गल्यायन मोद्गल्यायन रहा, काश्यप काश्यप रहा, भारद्वाज भारद्वाज ही कहलाया जाता रहा। नाम का कोई महत्व नहीं है। महत्व धर्म का है।

भगवान ने कहा –**धम्मो हि सेट्ठो जनेतस्मिं** ।

–जन-जन में धर्म ही श्रेष्ठ है याने धर्म ही महान है, धर्म ही अग्र है, धर्म ही धारण करने योग्य है। सम्प्रदाय नहीं।

आओ साधकों! बिना किसी साम्प्रदायिक बाड़े में बँधे, शुद्ध धर्म ही धारण करना सीखें, जिससे कि महा अनिष्टकारी जात-पांत के बन्धनों, कर्मकाण्ड की हथकड़ियों, साम्प्रदायिक जंजालों और मिथ्या दार्शनिक मान्यताओं की बेड़ियों से छुटकारा पायें और सचमुच अपना मंगल साध लें।

मंगल-मित्र,
स. ना. गो.